श्रमण संस्कृति का हृदय एवं मस्तिष्क

❑ डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन

श्रमण संस्कृति का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इसका हार्द हैं – अहिंसा एवं मस्तिष्क है – अनेकांतदर्शन ! परिग्रही अहिंसक नहीं हो सकता और हिंसक अनेकांती नहीं बन सकता। अहिंसा और अनेकांत का अन्योन्याश्रित संबंध है। प्रो. रवीन्द्रकुमार जैन रहस्योद्घाटन कर रहे हैं – अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत सिद्धांतों का। – सम्पादक

सभ्यता के समान संस्कृति का स्वरूप, परिभाषा एवं विधायक तत्त्व आज तक सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत नहीं हो सके हैं। पूर्व और पश्चिम के विद्वान् जन्मजात पारम्परिक संस्कारों को, जन्मोपरांत सत्संग, विद्या एवं प्रतिभा से उद्भूत परिष्कृत जीवन को, महान् पुरुषों के गुणों और कार्यों के अनुकरण को संस्कृति कहते हैं। वस्तुतः संस्कृति की चेतना इतनी व्यापक एवं गहरी है कि हम उसे जन्मजात, ईश्वरीय देन या विद्वत्ता एवं प्रतिभा से प्रसूत नहीं कह सकते है। आज संपूर्ण विश्व की संस्कृति में एक अद्भुत संश्लिष्टता दृष्टिगोचर हो रही है। विज्ञान और उद्योगीकरण के विकास ने विश्व को बहुत बड़ी सीमा तक बाँध रखा है। सभी देश एक दूसरे के गुणों, कार्यों और विचारों से किसी न किसी मात्रा में प्रभावित हो रहे हैं।

इस प्रकार इस प्रकट सत्य के बावजूद हम प्रत्येक देश, जाति एवं संप्रदाय की संस्कृति के कुछ खास लक्षणों को तो समझ ही सकते हैं।

संस्कृति की बहुमान्य परिभाषाएँ ये हैं – आप्टे के संस्कृत शब्दकोष में संस्कृत धातु के अनेक अर्थ किये गए है – सजाना, संवारना, पवित्र करना, सुशिक्षित करना आदि।[1] वेब्सटर्स इन्टर नेशनल डिक्शनरी में संस्कृति के विषय में यह कथन है – "मस्तिष्क, रुचि और आचार व्यवहार की शिक्षा और शुद्धि। इस प्रकार शिक्षित और शुद्ध होने की व्यवस्था, सभ्यता का बौद्धिक विकास, विश्व के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान एवं कथित वस्तुओं से स्वयं को परिचित कराना"।[2]

उक्त परिभाषाओं का तात्पर्य यह है कि मानव की अंतः बाह्य व्यक्तिगत एवं सामाजिक उत्कृष्टता ही संस्कृति है।

श्रमण कौन?

श्रमण शब्द पर विचार करने के पूर्व सभ्यता और संस्कृति के असली अंतर को जान लेना अत्यंत आवश्यक है। **सभ्यता मानव जाति का बहिर्मुखी एवं बहुमुखी भौतिक विकास है जबकि संस्कृति अंतर्मुखी, आध्यात्मिक एवं गुणात्मक विकास है। सभ्यता और संस्कृति में साम्य नहीं विषमता और विरोध है। संस्कृति के शव पर सभ्यता का प्रासाद बनता है जबकि संस्कृति का गुलाब सभ्यता के बगीचे में उगता है।**

जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव थे।

(1) To adorn, grace, decorate (2) To refine, polish (3) To consecrate by rebeating mantras (4) To purity (a person) (5) To cultivate educate, train

(2) The training and retirement of mind to ..... and manners, the condition of ..... than trained and retired, the .....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे ही आदि श्रमण थे अतः श्रमणों या जैनों की संस्कृति तीर्थंकरों की संस्कृति है।

यह आत्मोन्नयन और त्याग तपस्या की संस्कृति है। 'श्रमण' शब्द का अर्थ है श्रम, शम, सम का जीवन जीनेवाला संत या मुनि। श्रम अर्थात् तपश्चर्या एवं साधना, शम स्वयं के राग-द्वेष का शमन कर शांत रहना और सम का अर्थ है सभी जीवों के प्रति समभाव रखना। जैन श्रमण इन तीन गुणों से युक्त होते थे। संस्कृत भाषा का श्रमण शब्द अपभ्रंश और प्राकृत में 'समण' के रूप में प्रचलित है। वर्तमान में जिसे हम आत्म-धर्म या अध्यात्म कहते हैं। यह वही श्रमणधर्म है। यही श्रमण संस्कृति का प्रतीक है। प्रत्येक धर्म का एक दार्शनिक पक्ष होता जो उसकी मान्यताओं का पोषक होता है। जैन धर्म का दार्शनिक पक्ष है अनेकांतवाद। इस दर्शन के माध्यम से हम सृष्टि, तत्त्वनिरुपण और व्यक्ति स्वातंत्र्य को भलीभांति समझ सकते हैं। जैन धर्म की संरचना नहीं हुई, वह सनातन है, उसे सुधारवादी और परवर्ती धर्म कहना मात्र अज्ञान है।

प्रवचनसार के चारित्राधिकार में 'श्रमण' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है – **"पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुःख परिमोक्खं"**[1]। अर्थात् हे भद्र! यदि तू दुःखों से मुक्त होना चाहता है तो श्रामण्य-मुनि पद स्वीकार कर। प्रवचनसार के चारित्राधिकार की २६वीं, ३२वीं तथा ४१वीं गाथाओं में **समण** शब्द का अत्यंत सटीक प्रयोग हुआ है। श्रमण के गुण और चारित्र का बहुत तर्क संगत एवं हृदयस्पर्शी वर्णन वहाँ किया है। अतः स्पष्ट है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का निश्चल धारी ही श्रमण कहलाता है। इसी रत्नत्रय की पूर्णता मोक्ष प्राप्ति का सशक्ततम आधार है।

इस आधारभूत विवेचन के साथ यह जानना अत्यंत समीचीन होगा कि श्रमण संस्कृति के प्राणभूत विशिष्ट गुण कौन-कौन से हैं उसका हृदय और मस्तिष्क क्या है? श्रमण संस्कृति के हृदय के रूप में अहिंसा धर्म प्रतिष्ठित है और उसके मस्तिष्क के रूप में अनेकांत दर्शन प्रतिष्ठित है। अहिंसा समस्त जैनाचार का पर्यायवाची शब्द है तो अनेकांत समस्त जैन दर्शन या विचारधारा का पर्यायवाची शब्द है।

अहिंसा

जैन धर्म में अहिंसा समस्त उत्कृष्ट आचार संहिता का पर्याय है। वह केवल जीव की रक्षा मात्र तक सीमित नहीं है। अहिंसा में शेष चार व्रत पूर्णतया गर्भित है। अपरिग्रह तो अहिंसा धर्म का मुकुट है। इसके बिना वह पूर्ण नहीं हो सकती। मन-वाणी और कर्म में इसकी एक रूपता प्रकट होनी चाहिए।

"अहिंसा की विशाल विमल धाराएं प्रांतवाद, भाषावाद, पंथवाद और संप्रदायवाद के क्षुद्र घेरे में कभी आबद्ध नहीं हुई है। न किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर ही रही है। यह विश्व का सर्वमान्य सिद्धान्त है। भगवान् महावीर ने अहिंसा को भगवती कहा है।"[2] जैन आगमों के अनुसार भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावीर ने पांच महाव्रतात्मक धर्म का निरुपण किया और शेष २२ तीर्थंकरों ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया। इस विविध परंपरा से फलित यह हुआ कि धर्म का मौलिक रूप अहिंसा है। सत्य आदि उसका विस्तार है। इसलिए आचार्यों ने लिखा है- **"अवसेसा तस्स रक्खणा"** शेष व्रत अहिंसा की सुरक्षा के लिए है।"

निश्चय दृष्टि से आत्मा ही अहिंसा है और वही हिंसा

१. प्रवचनसार - चारित्राधिकार '१'
२. अहिंसा तत्वदर्शन - पृ.३ लेखक मुनि नथमल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है और जो प्रमत्त है वह हिंसक है।

"आया चेव अहिंसा आया हिंसेति निच्छओ एसो।
जो होइ अप्पमत्तो अहिंसओ हिंसओ अरिओ।।"

श्रामणी अहिंसा निषेधात्मकता से उठकर सक्रिय विधानात्मकता में परिणत होती है। यह केवल हिंसा न करना मात्र नहीं है, बल्कि दुःखी प्राणियों में समभाव और यथासंभव सह अस्तित्व प्रदान करने का संकल्प भी है। आज के विश्व को इस प्रकार की रक्षापरक, मैत्रीपरक और समभावी अहिंसा की महती आवश्यकता है। मानव हिंसा, झूठ, चोरी, लुटेरापन, कपट और शोषण जैसी विभावात्मक अवस्था में बहुत देर तक नहीं रह सकता। उसे आत्मा की सहज, शांत एवं समभावी अवस्था में आना ही होगा। यही उसकी स्वाभाविक परिणति है।

विश्व के सभी धर्मों (हिंदू धर्म, इस्लामधर्म, ईसाईधर्म, सिक्ख धर्म, बौद्ध धर्म आदि) ने अपनी आचार संहिता में अहिंसा को महत्व दिया है, परंतु श्रमण परंपरा ने अहिंसा का जो व्यापक, गंभीर एवं सार्वभौम तथा सार्वकालिक स्वरूप स्थिर किया है वह अनुपम एवं अद्वितीय है। श्रमण पूर्ण अहिंसक होता है तो श्रमणोपासक श्रावक सीमित रूप से पूर्ण अहिंसक होता है। पूर्ण अहिंसा मन-वचन और शरीर की एकता के साथ तथा कृत, कारित और अनुमोदन के साथ पाली जाती है।

सच्चा अहिंसक भीतर से ईमानदार होता है। वह अन्तर्मुखी दृष्टिवाला होता है। बहिर्मुखी दृष्टिवाला व्यक्ति अवसरवादी होता है। उसके मन-वचन और क्रिया में एकरूपता नहीं होती। अहिंसक स्वभाव से अहिंसक होता है, वह निष्काम कर्मयोगी होता है, वह फल-आशा कभी नहीं करता। सच्चा अहिंसक पहले स्वयं की आत्मा को निर्मल करता है तभी वह दूसरों के लिए आदर्श बनता है। अहिंसा आत्मा को परखती है। सच्चाई उसको तेज करती है। जहाँ ये नहीं, वहाँ व्यक्तित्व ही नहीं; धर्म तो दूर की बात है। आत्म शोधक ही दूसरों को उबार सकता है।"

अपरिग्रह

अपरिग्रह अर्थात् इच्छाओं, अधिकारों और वस्तु धन-धान्यादि का असंग्रह सच्चे अहिंसक के लिए आवश्यक है। यह असंग्रह भाव क्रिया के स्तर पर हो तभी पूर्ण होता है। स्थूल रूप से त्याग और भावना के स्तर पर यदि आसक्ति बनी रहे, तो वह अपरिग्रह नहीं हैं। पाप का मूल जन्म तो मन में ही होता है। क्रिया तो मात्र अनुचरी है। मन का पाप क्रिया में परिणत न भी हो, तब भी पाप का बंध होता है।

आज समस्त विश्व का संघर्ष मूलतः परिग्रह एवं अपरिग्रह अर्थात् मूलभूत-न्यूनतम सुविधाओं का विषमीकरण है। हमारी पूंजीवादी व्यवस्था में धनवान अधिक धनवान हो रहा है और गरीब अधिक गरीब हो रहा है। साम्राज्यवाद को परास्त किया जा सकता है परंतु पूंजीवाद को नहीं क्योंकि यह वेतसी वृत्ति का जीवन जीना भी जानता है। यह मक्कारी में निपुण होता है। यह शोषण और हत्याएं करता है और अनाथालय चलाता है, मंदिर बनवाता है। परिग्रही होकर कोई अहिंसक नहीं हो सकता, हो भी सका तो आंशिक रूप से ही। अपरिग्रह अहिंसा की पहली और अनिवार्य शर्त है। सच्चा त्यागी अपरिग्रही पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा से सर्वथा मुक्त रहता है। वह गृहस्थ भी हो तो जल में कमल की तरह रहता है। वह तो अपने शरीर को भी परिग्रह मानता है।

१. हरिभद्र कृत अष्टक से
२. अहिंसा तत्व दर्शन पृ. १०६ — मुनि नथमल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार की वस्तुएं ससीम है और मानव मन की इच्छाएं असीम है। उन दोनों का मेल नहीं हो सकता। तृष्णा ऐसी प्यास है जो संग्रह से शांत किये जाने पर और तीव्र होती है। तृष्णा मानव की अनेक उत्तम शक्तियों का विकास नहीं होने देती।

"जैन श्रमण परिग्रह को मन-वचन और कर्म से न स्वयं संग्रह करता है, न दूसरों से करवाता है और न करने वाले का अनुमोदन ही करता है। वह पूर्ण रूप से अकिंचन/अनासक्त और असंग होता है। जैन श्रमण का एक नाम निर्ग्रन्थ है।"

अनेकांत दर्शन

वस्तु अनेकान्तात्मक है। एक ही वस्तु को अनेक दृष्टिकोणों से देखना-समझना अनेकांत है। एक ही वस्तु के संबंध भेद से अनेक रूप हो सकते हैं। यथा एक ही व्यक्ति अपेक्षा भेद से पुत्र है, पिता है, पति है, शिष्य है और गुरु भी है।

अनेक का अर्थ है एक से अधिक। यह संख्या दो भी हो सकती है और दो से अधिक भी। अंत का अर्थ है धर्म-अवस्था विशेष। वस्तु के अनेक धर्मों को एक साथ समझानेवाली अर्थ-व्यवस्था अनेकांत है। जब कि वस्तु के अनेकांत स्वरूप को समझाने वाली सापेक्ष कथन पद्धति स्याद्वाद है। व्यक्ति एक समय में वस्तु के अनेक पक्षों को देख समझ तो सकता है, परंतु वह केवल एक ही पक्ष को व्यक्त कर सकता है। (एक समय में)

स्यात् शब्द का प्रयोग वस्तु की पर्यायों में / अवस्थाओं में किया जाता है। पर्याय परिवर्तनशील होती हैं। गुण वस्तु के अनुजीवी होते हैं। अनेकांत दर्शन वस्तु की गुण-पर्याय परक स्थिति का पूर्ण अध्ययन करके उसकी संपूर्णता पर दृष्टि रखकर सापेक्ष कथन करता है। वह सदाग्रही है, एकांती और हठी या दुराग्रही नहीं। बौद्धदर्शन प्रत्येक वस्तु को अनित्य और नश्वर मानता है तो दूसरी ओर अद्वैतवाद वस्तु को नित्य और अविनाशी मानता है। चार्वाक पुद्गल या वस्तु के अतिरिक्त परलोक, पुनर्जन्म या आत्मा जैसी किसी मान्यता में विश्वास नहीं रखता। वह विशुद्ध भौतिकतावादी और प्रत्यक्षदर्शी है। स्पष्ट है कि उक्त तीनों धारणाएं ऐकान्तिक और अतिवादी है। स्याद्वाद संशयवाद नहीं है। संशयवाद में दोनों कोटियाँ अनिश्चित होती है। जबकि स्याद्वाद में दोनों कोटियाँ निश्चित होती है। जैसे – यह सांप है या रस्सी? द्रव्य दृष्टि से वस्तु नित्य है और पर्याय दृष्टि से अनित्य भी है। अनेकांती 'भी' में विश्वास रखता है जबकि एकान्ती 'ही' में। एक आपेक्षिक दृष्टि से कथन करता है तो दूसरा वस्तु के प्रत्यक्ष एक पक्ष पर ही आग्रह करता है।

सप्तभंगी द्वारा भी उक्त सापेक्षवाद को स्पष्ट किया गया है। एक ही वस्तु को सात भंगों अर्थात् प्रकारों से कहा है – समझा जा सकता है। इसमें वस्तु की पर्याय दशा का महत्व है। अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति, अवक्तव्य (४ भेद) अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अस्ति नास्ति अवक्तव्य (३ भेद)

सप्तभंगी के स्पष्टीकरण के लिए घट का उदाहरण प्रचलित है-

१. स्यादस्ति – प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव (अवस्थाविशेष की अपेक्षा से) सत् है।

२. स्यान्नास्ति – प्रत्येक वस्तु पर-द्रव्य की अपेक्षा से असत् है।

३. स्यादस्तिनास्ति – उक्त दोनों दृष्टियों की अपेक्षा से है भी, नहीं भी।

१. जैन आचार - सिद्धांत और स्वरूप -पृ. ६५ - श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. स्यादवक्तव्य – हाँ, न, की दोनों अवस्थाओं को एक साथ नहीं कहा जा सकता। बोलने का क्रम होता है। दोनों को एक कहना अवक्तव्य है।

५. स्यादस्ति अवक्तव्य – किसी अपेक्षा से घट है और अन्य अपेक्षा से अवक्तव्य है।

६. स्यान्नास्ति अवक्तव्य – किसी अपेक्षा से घट नहीं है और किसी अपेक्षा से अवक्तव्य है।

७. स्यादस्ति-नास्ति अवक्तव्य – अपेक्षा से है, नहीं है और अवक्तव्य है।

अनेकांत दर्शन का प्राण 'नय' है। 'नय' का अभिप्राय है वस्तु के वर्तमान पक्ष को ध्यान में रखकर बात करना। इसमें अन्य दर्शनों का समन्वय हो जाता है। समभाव आ जाता है। विश्व की सभी समस्याएं इस दृष्टिकोण को अपनाने से सुलझ सकती हैं। नय एक व्यावहारिक दृष्टि है। यह वस्तु के पर्याय पक्ष को महत्व देकर सभी दृष्टियों में प्रयोगात्मक समभाव पैदा करती हैं।

निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि श्रमण संस्कृति का हृदय अहिंसा है और मस्तिष्क है अनेकांत। ये दोनों एक दूसरे के पूरक है। जैन दर्शन आदर्शमूलक अप्रायोगिक अभेदवाद को न मानकर भेदवाद को मानता है। सामान्यतया वह अविरोधी है। यह दृष्टि सापेक्ष सत्य पर आधारित है।

"अनेकांतदृष्टि यदि आध्यात्मिक मार्ग में सफल हो सकता है और अहिंसा का सिद्धान्त यदि आध्यात्मिक कल्याण का साधन हो सकता है, तो यह भी मानता चाहिए कि ये दोनों तत्त्व व्यावहारिक जीवन का श्रेय अवश्य कर सकते हैं।"

१. अनेकांतदर्शन पृष्ठ - २६ लेखक-पं. सुखलाल संघवी

❑ **डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, लेखक एवं साहित्यकार हैं। आपका जन्म झांसी में सन् १९२५ में हुआ। आप एम.ए., पी.एच.डी. एवं डी.लिट्. उपाधियों से सम्मानित हैं। आपने ३५ वर्षों तक अनेक कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में स्नाकोत्तरीय अध्यापन का कार्य किया है तथा ३५ छात्रों को पी.एच.डी. करवाई है। आपके लगभग २०० निबंध विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपने समीक्षा एवं शोध से सम्बन्धित २० पुस्तकों का प्रणयन किया है।**

– सम्पादक

जीवन में मोक्ष की बात तो दूर रही, जहां संस्था और समाज के सदस्यों में स्वच्छंदता आ जाय तो समाज नहीं चलता, स्वच्छंदता के कारण देश की व्यवस्था भी छिन्न-भिन्न हो जाती है। कर्म-बन्धन से वही मुक्त हो सकता है जो अपनी स्वच्छंदता को रोक लेता है। जहाँ स्वच्छंदता आ जाती है वहाँ धर्म धर्म नहीं, तप तप नहीं रहता।

– सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org